देर-सबेर बच्चे पढ़ना सीख ही जाते हैं

डेनियल ग्रीनबर्ग

लगभग दो दशकों में सडबरी वैली में 'वाचनवैकल्य' (डिस्लेक्सिया) का एक भी मामला सामने नहीं आया। ऐसा क्यों हुआ, यह किसी को ठीक पता नहीं है। डिस्लेक्सिया के कारण, उसकी प्रकृति, एक कार्यात्मक गड़बड़ी के रूप में उसका अस्तित्व तक भारी विवादों का विषय हैं। कुछ विद्वानों का मानना है कि हमारी आबादी का लगभग 20 प्रतिशत हिस्सा इस तथाकथित रोग से ग्रस्त होता है। पर तथ्य यह है कि हमने स्कूल में इसे देखा तक नहीं है। शायद कारण यह रहा हो कि हमने किसी को पढ़ना सीखने पर बाध्य ही नहीं किया है।

पढ़ना हमारी ज़बरदस्त परीक्षा लेता है। पर अन्य चीज़ों की तरह ही हमने यहाँ भी पहल बच्चों को ही करने दी है। हमारी ओर से उन्हें कतई उकसाया नहीं जाता। कोई यह नहीं कहता, "अब पढ़ना सीखो!" कोई यह नहीं पूछता, "क्या तुम अब पढ़ना सीखना नहीं चाहोगे?" और कोई भी नकली उत्साह से यह नहीं कहता, "पढ़ना

कितना मज़ेदार होगा, है ना?" हमारा नारा हैः छात्र पहला कदम उठाए, तब तक इन्तज़ार करो।

उस समय अपने विश्वासों के अनुरूप जीना बड़ा आसान होता है जब चीज़ें वही शक्ल लेती जाती हैं जैसा उन्हें सब चाहते थे। मेरे ही परिवार को लें। हमारा सबसे बड़ा बच्चा पाँच साल की उम्र में पढ़ने में रुचि लेने लगा। और अपने आप ही छह साल का होते-होते वह पाठक बन गया। कोई समस्या नहीं हुई। सब कुछ सही 'हो' गया।

तब हमारी बिटिया आई जो ढाई साल छोटी थी। स्कूल के अन्य लोगों की ही तरह, हमने इन्तज़ार किया कि वह कहे कि उसे पढ़ना सिखाया जाए - या वह खुद को सिखा दे। हमने इन्तज़ार किया। और इन्तज़ार किया। और इन्तज़ार किया।

छह साल की उम्र में उसे पढ़ना नहीं आया, तो कोई मुश्किल नहीं, जहाँ तक हमारा प्रश्न था।

सात साल की उम्र में भी वह पढ़ नहीं पाई, यह लोगों की नज़र में सही नहीं था। दादा-दादी, नाना-नानी, परिचित असहज होने लगे, वे हमें लक्षित कर संकेत देने लगे।

वह आठ साल की आयु में भी पढ़ नहीं पाती, यह बात परिवार और मित्रों के लिए एक भारी काण्ड था। हमें गैर-ज़िम्मेदार माता-पिता के रूप में देखा जाने लगा। स्कूल, खैर वह स्कूल सही स्कूल तो हो ही नहीं सकता, अगर वहाँ आठ-साला बच्चे निरक्षर रह जाएँ और उनके लिए कोई उपचारात्मक कदम उठाया न गया हो।

पर स्कूल में इस तथ्य पर कोई खास ध्यान देता लगा ही नहीं। बिटिया के अधिकांश आठ वर्षीय दोस्त पढ़ पाते थे। कुछ नहीं पढ़ पाते थे। उसे खुद को कोई परवाह नहीं थी। स्कूल में उसके दिन बेहद व्यस्त व खुशनुमा थे।

नौ साल की होने पर उसने तय किया कि उसे पढ़ना है। मुझे पता नहीं कि उसने यह निर्णय क्यों लिया, और उसे कुछ याद नहीं। साढ़े नौ की होते-होते वह पूर्ण पाठक बन चुकी थी। वह कुछ भी पढ़ सकती थी। अब वह किसी के लिए समस्या नहीं रही। सच तो यह है कि वह कभी समस्या थी ही नहीं।

हमारे निजी अनुभव में लीक से हट कर कुछ भी नहीं था। स्कूल में कुछ बच्चे जल्दी पढ़ने लगते हैं, तो कुछ देर से। सभी तब पढ़ते हैं जब वे इसके लिए तैयार हों, उसके मिनट भर पहले नहीं। और सभी अन्ततः अच्छा-खासा पढ़ पाते हैं।

देर से पढ़ना शुरू करने वाले कुछ बच्चे किताबी कीड़ा बनते हैं। कुछ बच्चे जो जल्दी पढ़ना सीखते हैं, पहले इस कौशल पर काबिज़ होने के बाद बिरले ही किसी किताब को पूरा पढ़ते हैं।

हमारे स्कूल में एक भी प्रारम्भिक पठन पाठ्यपुस्तक नहीं है। न पहली कक्षा की, न दूसरी-तीसरी कक्षा की

प्रवेशिकाएँ हैं। अक्सर सोचता हूँ कि पेशेवर शिक्षकों के अलावा कितने वयस्कों ने कभी प्रारम्भिक प्रवेशिकाओं को देखा भी है। वे बेवकूफी की हद तक सरल, उबाऊ और अप्रासंगिक होती हैं। आधुनिक बच्चे जो सड़क-छाप चतुराई से परिचित होते हैं और टी.वी. द्वारा पोषित, ये किताबें उन्हें केवल बेवकूफी भरी ही लग सकती हैं।

मैंने तो किसी बच्चे को ऐसी किताब को मज़ा लेने के लिए पढ़ते नहीं देखा है।

सच तो यह है कि स्कूल में कोई भी पढ़ने को लेकर कभी खास चिन्ता नहीं करता। केवल कुछ ही बच्चे, जब पढ़ने का निर्णय लेते हैं तो किसी से मदद माँगने आते हैं। लगता है पढ़ना सीखने का प्रत्येक का अपना तरीका होता है। कुछ, पढ़ा गया सुनने के साथ शुरुआत करते हैं, कहानियों को याद कर लेते हैं और फिर अन्ततः उन्हें पढ़ने लगते हैं। कुछ सीरियल (कॉर्नफ्लेक्स जैसे नाश्ते) के डब्बों, तो कुछ खेल के निर्देशों से, तो कुछ सड़क पर लगे इश्तहारों से पढ़ना सीखते हैं। कुछ खुद को अक्षरों की ध्वनियाँ सिखाते हैं, तो दूसरे अक्षर व मात्रा की संयुक्त ध्वनियाँ, तो कुछ अन्य पूरे शब्दों से ही शुरुआत करते हैं। ईमानदारी से कहूँ तो हमें बिरले ही यह पता चलता है कि वे पढ़ना सीखते कैसे हैं। और वे भी बिरले ही हमें बताते हैं। एक दिन मैंने एक ऐसे बच्चे से जो ताज़ा-ताज़ा पाठक बना था, पूछा, "तुमने पढ़ना भला कैसे सीखा?" उसका जवाब था, "बड़ा आसान था। मैंने 'इन' (अन्दर) सीखा। मैंने 'आउट' (बाहर) सीखा और तब मुझे पढ़ना आ गया।"

लगता यह है कि पढ़ना बच्चों के लिए बोलने के ही समान है। समाज बच्चों को बोलने की कक्षाओं में नहीं डालता। शायद ऐसा इसलिए होता है कि बच्चे लगभग हमेशा ही उस वक्त से पहले बोलना सीख जाते हैं, जब स्कूल उन्हें जकड़ लेता है। मेरा मानना है कि अगर एक साल के बच्चे स्कूल जाने लगें तो बोलने की कक्षाएँ भी शुरू हो जाएँगी जिसके साथ वे सभी ताज़ा खोजे गए स्पीकिंग डिसऑर्डर्स सम्बन्धी कक्षाएँ भी होंगी। कुछ ही दुर्भाग्यशाली बच्चों की कार्यात्मक वाचा गड़बड़ियाँ होती हैं जिसमें उपचार की आवश्यकता पड़ती है। आश्चर्यजनक रूप से अधिकांश बच्चे किसी तरह, और कोई नहीं जानता ठीक किस तरह, स्वयं को बोलना सिखाते हैं।

बच्चे बोलना क्यों सीखते हैं? सच यह है कि शिशु मानवों की दुनिया से घिरे रहते हैं जो बोलने द्वारा सम्प्रेषण करते हैं। बच्चे इस दुनिया को काबिज़ करने से अधिक किसी दूसरी चीज़ को नहीं चाहते। आप उन्हें रोकने की कोशिश तो करें! संकल्प और धैर्य का महानतम उदाहरण है, बोलना सीखने का उनका संघर्ष।

और ठीक यही सडबरी वैली में

पढ़ने को लेकर होता है। जब बच्चों को स्वयं उनके भरोसे छोड़ दिया जाता है, वो अन्ततः खुद-ब-खुद यह देख लेते हैं कि हमारी दुनिया में लिखित शब्द ही ज्ञान की जादुई कुंजी हैं। जब जिज्ञासा उन्हें आखिरकार वह चाबी हासिल करने की इच्छा की ओर ले जाती है तो वे उसके पीछे उसी उत्साह से पड़ जाते हैं जो वे अपनी दूसरी तलाशों में भी दर्शाते हैं। और यह उनके लिए बोलना सीखने से कहीं अधिक आसान होता है। अब तक वे बड़े हो चुके होते हैं और नई चीज़ें सीखने में अनुभवी। वे जानते हैं कि भाषा क्या है, वह कैसे काम करती है, शब्द क्या हैं? सो बोलने की तुलना में पढ़ना सीखने में काफी कम समय और प्रयास लगाना पड़ता है। लिखना बिलकुल भिन्न है।

कई बच्चे केवल लिखना ही नहीं, अच्छी तरह से लिखना चाहते हैं। यह बात सौन्दर्यबोध की है। सो वे किसी व्यक्ति के पास जाते हैं ताकि लेखन की कला को बाकायदा सीख सकें। लिखना चित्रकारी की तरह होता है, या कढ़ाई की तरह।

लेखन को एक सौन्दर्य कौशल के रूप में देखना कई बार विचित्र स्थितियाँ पैदा करता है। नन्हे बच्चों को घण्टों-घण्टों तक सुन्दर लेखन सीखते देखना असामान्य बात नहीं है। पर अजीब यह तब होता है जब उनमें से आधे पढ़ना जानते ही नहीं हैं!

"आप सुलेख क्यों सीख रहे हो, अगर तुम पढ़ ही नहीं सकते?" मैंने अक्सर पूछा है।

"क्योंकि यह सुन्दर है," जवाब मिलता है।

कुछ बच्चे हस्तलेखन को कला के

रूप में सीखते हैं, फिर किसी और काम में लग जाते हैं और उसे भूल जाते हैं। कुछ सालों बाद वे पढ़ना सीखते हैं, और तब फिर से लिखना सीखते हैं।

मेरा मानना है कि यह दोहराए जाने लायक है। सडबरी वैली में किसी भी बच्चे को पढ़ना सीखने के लिए बाध्य नहीं किया गया है, न ही इसके लिए धकेला, उकसाया या फुसलाया गया है। हमारे यहाँ डिस्लेक्सिया का एक भी मामला नहीं मिला है। हमारे यहाँ से पढ़े बच्चों में एक भी दरअसल कार्यात्मक रूप से निरक्षर नहीं रहा है। कुछ आठ साल के, कुछ दस साल के और यदा-कदा बारह साल के बच्चे भी निरक्षर रहे हैं। पर जिस समय तक वे स्कूल छोड़ते हैं, उनमें अन्तर नहीं किया जा सकता। कोई भी जो हमारे बड़े बच्चों से मिलता है, यह अनुमान नहीं लगा सकता कि उन्होंने किस उम्र में पढ़ना या लिखना सीखा होगा।

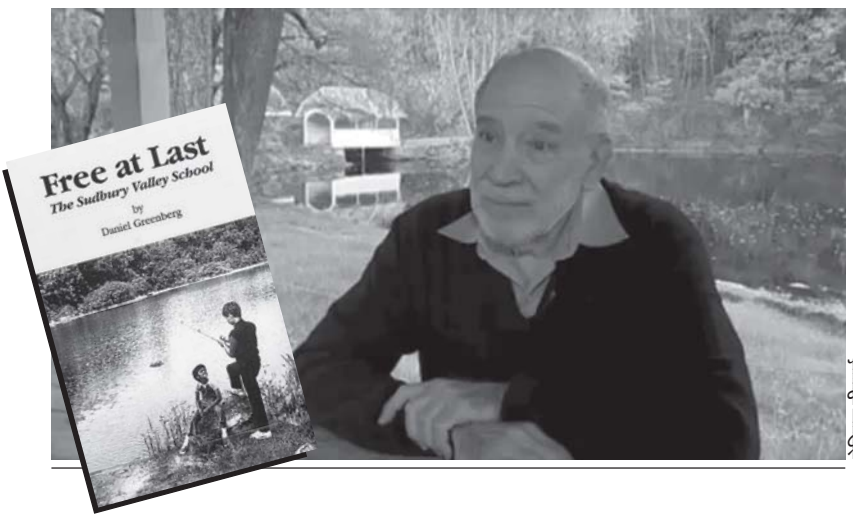

डेनियल ग्रीनबर्ग

डेनियल ग्रीनबर्ग: सडबरी वैली स्कूल के संस्थापक सदस्य। विद्यालय संगठन के मॉडल पर इनकी अनेक किताबें प्रकाशित हो चुकी हैं। कोलम्बिया विश्वविद्यालय में भौतिकशास्त्र के प्राध्यापक रहे हैं।

अँग्रेज़ी से अनुवाद: पूर्वा याज्ञिक कुशवाहा: लेखन एवं अनुवाद कार्य में मसरूफ हैं। एकलव्य के लिए कई शैक्षिक ग्रन्थों का हिन्दी में अनुवाद। जयपुर में निवास।

यह लेख, फ्री एट लास्ट, द सडबरी वैली स्कूल, से साभार।